वर्गीय असमानता और शिक्षाः एक परिचय

अमन मदान

जीवन में और खासतौर से शिक्षा में मिलने वाले अवसरों पर परिवार की आर्थिक हैसियत का असर काफी गहरा होता है। आर्थिक तौर पर कमजोर तबकों की पहुंच अच्छे स्कूलों तक नहीं हो पाती। उच्च शिक्षा में तो यह विभाजन काफी गहरा हो जाता है। उच्च शिक्षा या तकनीकी शिक्षा के अवसर अधिकाशतः मध्यमवर्ग तक ही सीमित रह जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? यह लेख इसके आर्थिक कारणों को तलाशने का प्रयास करता है।

काम और उपभोग एवं शिक्षा के साथ उसका अंतर्संबंध

हमारी दुनिया में पाई जाने वाली गैर-बराबरी को बहुत सारे कारक गढ़ते भी हैं और उस पर अपनी छाप भी छोड़ते हैं। समाज वैज्ञानिक सामाजिक वर्ग का इस्तेमाल हमारे काम व सेवाओं के उपभोग के हमारे तौर-तरीकों की वजह से सामाजिक गैर-बराबरी पर पड़ने वाले असर का वर्णन करने के लिए करते हैं। इसका संबंध इनसे जुड़ा हुआ भी है लेकिन जाति, लिंग, क्षेत्र आदि के तरीके से अलग भी है, जो हमें सामाजिक गैर-बराबरी की तरफ ले जाता है। यहां पर जोर इस बात पर है कि कोई व्यक्ति कैसे काम करता है, बाजार के हालात क्या हैं और कोई व्यक्ति क्या उपभोग करता है, इन सभी को मिलाकर एक सामान्य सामाजिक अनुभव बनता है। हम इनमें जो पैटर्न देखते हैं वे अलग-अलग सामाजिक वर्गों में फर्क करने में हमारी मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में हम यह पाते हैं कि शिक्षित नौकरीपेशा, पेशेवरों व प्रबंधकों के परिवार मिलाकर एक ऐसा समूह बनाते हैं जिनके बच्चों की संख्या कॉलेजों में सबसे ज्यादा है। यह सब इसके बावजूद है कि यह वर्ग भारतीय आबादी का एक बहुत ही छोटा हिस्सा है। एक दूसरे छोर पर अशिक्षित व अकुशल शारीरिक कामगारों के बच्चे नजर आते हैं जिनमें से ज्यादातर को विद्यालय से बाहर देखा जाता है और उनमें से बहुत ही छोटी संख्या कॉलेजों में दाखिल हो पाती है। समाज की वर्ग व्यवस्था उनकी शिक्षा पर महत्त्वपूर्ण असर डालती है। कौन अच्छा करता है या कौन अच्छा नहीं करता है, इस पर असर डालने के अलावा यह शिक्षा के लक्ष्यों पर भी असर डालती है और इस बात को भी प्रभावित करती है कि अच्छी व सार्थक शिक्षा किसे माना जाएगा।

अमीना का सामाजिक वर्ग और उसके बच्चों की शिक्षा

अमीना का परिवार बेंगलुरू के बाहरी इलाके में रहता है। उसके परिवार के लोग पहले किसानों के लिए काम करते थे लेकिन अब सभी शहर में काम करते हैं। उसके पति ऑटो रिक्शा चलाते हैं और दिन भर में 200-400 रुपए कमा लेते हैं। इस थोड़ी सी कमाई को थोड़ा बढ़ाने के लिए वह अपने आस-पास के

थोड़े ज्यादा संपन्न घरों में बरतन साफ करने व घरों की साफ-सफाई का काम करती है। बेंगलुरू के विकास के साथ-साथ उनकी आमदनी भी थोड़ी बढ़ी है और वे दोनों मिलकर महीने में 12000-15000 रुपए कमा लेते हैं। अमीना के परिवार को एक कमरे के घर के लिए महीने का 3000 रुपए भाड़ा देना पड़ता है। स्नानघर और शौचालय चार परिवारों के बीच साझा है। पति-पत्नी और दो बच्चों के परिवार के महीने भर के खाने का खर्च 6000 रुपए आता है। बच्चे पास में ही कम लागत वाले निजी स्कूल में जाते हैं। अमीना कहती है कि हरेक बच्चे की फीस के लिए हर महीने 500 रुपए चुकाना बहुत भारी पड़ता है लेकिन सरकारी स्कूल पर उसे भरोसा नहीं है। हालांकि निजी स्कूल में भी एक छोटे से कमरे में बहुत सारे बच्चे ठुंसे रहते हैं। बच्चे स्कूल को पसंद नहीं करते और उसकी बड़ी बेटी फिरोजा हर साल बड़ी मुश्किल से पास हो पाती है। अध्यापक को बहुत कम तनख्वाह, करीब 6000 रुपए महीना दी जाती है और वे सिर्फ पाठ्यपुस्तकों से नकल करवाते हैं और बच्चों को चुपचाप बिठाए रखने के लिए उन्हें मारते रहते हैं। अमीना इस उलझन में पड़ी हुई है कि क्या उसे फिरोजा को स्कूल से निकाल कर अपने साथ बरतन साफ करने के काम पर ले जाना चाहिए या नहीं। वह पूरे दिन काम करते-करते थककर चूर हो जाती है, अपने साथ फिरोजा के काम पर आने से उसे राहत ही मिलेगी। नन्ही फिरोजा को घटिया शिक्षा मिल रही है और उसे स्कूल से बाहर हो जाने की संभावना पर कई चीजों का असर है- उसके लड़की होने का, इस बात का कि वह बहुत ही कम विकसित क्षेत्र में पैदा हुई, उसके समुदाय का, आदि। ये सभी कारक शिक्षा से उसकी व उसके परिवार की उम्मीदों पर असर डालते हैं। वे इस बात पर भी असर डालते हैं कि 10 या 15 बरस की उम्र तक फिरोजा क्या-क्या तो सीख लेगी और क्या-क्या नहीं सीख पाएगी। उसकी शैक्षिक समस्याओं के लिए जिम्मेदार सभी कारकों में से सिर्फ आर्थिक कारकों पर हम इस अध्याय में अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

एक लड़के या लड़की के तौर पर फिरोजा की जिंदगी एक अलग ही दिशा में आगे बढ़ सकती थी, अगर उसके माता-पिता किसी कंपनी में प्रबंधक के पद पर काम करते हुए ऊंची तनख्वाह उठा रहे होते। वे अपने बच्चों को ऊंची फीस वाले स्कूलों में भेजते जिसकी मासिक लागत 5000 से 10000 रुपए प्रति माह या बेंगलुरू में उससे भी ज्यादा हो सकती थी। उसका स्कूली पढ़ाई छोड़ना लगभग नामुमकिन-सा होता, वह ज्यादा नहीं पढ़ती तो भी कम से कम स्नातक तो कर ही लेती। ये दो किस्म के परिवार दो अलग-अलग वर्गों से ताल्लुक रखते नजर आते हैं। इन बच्चों के अभिभावकों के, इस तरह के अलग-अलग व्यवसायों में होने के कई कारण हो सकते हैं। लेकिन बच्चों को मिलने वाले शैक्षिक अनुभवों में इस कदर गैर-बराबरी कई लोगों को गहरी चिंता में डाल देती है जो यह मानते हैं कि पैदाइशी तौर पर सभी बच्चे बराबर होते हैं। ऐसा लगता है कि उन्हें जिस किस्म की शिक्षा मिलती है उसमें उनकी अपनी कोई गलती नहीं है। इसके बजाय वह काफी हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि उनके परिवार किस सामाजिक वर्ग से आते हैं। शहरी मध्यमवर्गीय परिवारों में पैदा होने वालों को शहरी गरीब परिवारों में पैदा होने वालों से अलग मौके मिलते हैं।

जब हम सामाजिक वर्ग और शिक्षा की बात करते हैं, तब हम प्रमुखतः आर्थिक कारकों की ही बात करते हैं, लेकिन हम यह बात जानते हैं कि ये कारक सिर्फ अकेले असर नहीं डालते। विद्यालय में फिरोजा की जिंदगी को कई अड़चनों का सामना करना पड़ता है, जिसमें उसका लड़की होना, उसका धर्म, उसके रहने का इलाका, उसके अलावा और भी कई चीजें शामिल होती हैं। कई कारकों को एक साथ समझना मुश्किल होता है, इसलिए हम सामाजिक वर्ग को समझने से शुरुआत करेंगे, जिसका केन्द्रीय बिंदु यह है कि आर्थिक हालातों का लोगों की जिंदगी पर असर पड़ता है। साझे आर्थिक अनुभव साझे सामाजिक अनुभवों की ओर ले जाते हैं और यही वजह है कि हम सामाजिक वर्ग की बात कर रहे हैं। सामाजिक वर्ग का क्या मतलब होता है इसे समझने के कई तरीके हैं। सबसे सरलतम तरीके से इसे सामान्य व्यवसाय से समझा जा सकता है। इसका मतलब यह है कि एक ही व्यवसाय में काम करने वाले लोगों की आय, जीवनशैली और शिक्षा समान होती है। बेंगलुरू और दिल्ली के घरेलू कामगारों के बच्चे सांस्कृतिक तौर पर भले ही एक-दूसरे से इतने अलग हों कि वे एक-दूसरे की भाषा को बोल-समझ न पाएं, लेकिन वे इस बात को तुरंत पहचान लेंगे कि उन्हें एक ही तरह की मुसीबतों व तकलीफों को सहना पड़ता है। शिक्षा में ऐसे परिवारों की समान आर्थिक

हालातों की वजह से बनने वाले सामान्य सामाजिक पैटर्नों को देखने में सामाजिक वर्ग को समझना मदद करता है। इससे हमें यह समझने में भी मदद मिलती है कि बहुत सारी शैक्षिक समस्याओं का हल अर्थव्यवस्था और काम व हैसियत के बारे में हमारे विश्वासों से जुड़ा हुआ होता है। हालांकि इस बात को भी ध्यान में रखना जरूरी है कि सामाजिक वर्ग उन कई कारकों में से एक है जो हमारी शिक्षा पर असर डालते हैं व उसकी दिशा तय करते हैं। बाद वाले लेखों में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि हमारी जाति और दूसरी सामाजिक प्रक्रियाएं किस तरह से सामाजिक वर्ग पर असर डालती हैं।

वर्गीय गैर-बराबरी और भारत में शिक्षा

भारत में व्यावसायिक समूह

भारत की आबादी में अलग-अलग व्यावसायिक समूहों के आकार को सारणी 1 में देखा जा सकता है। इससे आप यह जान सकते हैं कि राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 68 वें दौर के मुताबिक, जिसमें पूरे देश के सभी राज्यों में से करीब एक लाख घरों का सर्वे किया गया था, 2011-12 में भारत का वर्गीय ढांचा किस तरह नजर आता है। इससे हमें यह पता चलता है कि सर्वे किए गए सभी घरों में से 42.3 प्रतिशत घरों द्वारा अपना व्यवसाय कृषि, पशुपालन, इत्यादि दर्ज करवाए जाने के साथ ही हम अब प्राथमिक तौर पर कृषि आधारित देश नहीं रह गए हैं। हालांकि इसका कतई यह मतलब नहीं है कि अब ऐसे देश में तब्दील हो गए हैं जो शिक्षित है और कार्यालयों में काम करता है। सभी भारतीय घरों में से ऐसे घरों की संख्या सिर्फ 18.6 प्रतिशत है जिन्हें हम नौकरीपेशा कह सकते हैं जो अपनी शिक्षा की बुनियाद पर पढ़ने और लिखने के जरिए अपना जीवन गुजर-बसर करते हैं। वे निचले दर्जे के शैक्षिक कामगारों जैसे प्राथमिक स्कूली अध्यापकों और बाबुओं के साथ पेशेवर, प्रबंधक और व्यवसायी हैं। चूंकि मेरे ज्यादातर पाठकों के इन्हीं सामाजिक वर्गों से होने की संभावना है, इसलिए इस बात पर भी एक नजर डाल लेना ठीक ही रहेगा कि हम पांच भारतीयों में से एक से भी कम हैं। हमारी आमदनी और जन संचार माध्यमों यानी मीडिया पर हमारा कब्जा उस पर हमारी मौजूदगी को बढ़ा-चढ़ाकर दिखलाता है। आज की तारीख में सूचना तकनीकी और बीपीओ यानी बिजनेस प्रोसेस आउटसोर्सिंग ही आज सबसे ज्यादा मांग वाले व्यवसाय हैं और ऐसा लगता है कि बहुत सारे भारतीय इनमें काम कर रहे हैं। शिक्षा में कुछ लोगों के लिए कामयाबी का मतलब किसी पेशेवर वर्ग में और खास तौर पर सूचना तकनीकी और बीपीओ में दाखिल हो जाना है। लेकिन सूचना तकनीकी और बीपीओ का क्षेत्र दरअसल बहुत ही छोटा है, उसमें

तालिका 1 : **भारत में व्यवसायिक समूह**

व्यवसाय	परिवारों का प्रतिशत
मालिक, प्रबंधक, चुने हुए प्रतिनिधि, पेशेवर, प्रोफेसर	13.2
निम्न श्रेणी के शिक्षित कामगार, स्कूल अध्यापक, लिपिक, नर्स, तकनीकी सहायक, ज्योतिष	5.4
कुशल कामगार, शिल्पकार, मशीन संचालक, वाहन चालक	18.8
अकुशल कामगारः दुकान सहायक, होटल सहायक, रेस्टोरेन्ट कार्मिक, सुरक्षा सेवाएं, सडक विक्रेता, घरेलू कामगार, संदेशवाहक, दरबान	19.1
किसान < 2 हेक्टेयर	17.8
किसान 2-4 हेक्टेयर	4.1
किसान >4 हेक्टेयर	1.9
पशु पालन और खेती	0.9
वन कामगार, मछुआरे, शिकार करने वाले, खेती कामगार	17.6
बेरोजगार, अज्ञात	1.2

2014-15 में करीब 35 लाख नौकरियां हैं (http://www-nasscom-in/impactAindiasAgrowth27/05/2015) जो कि 40 करोड़ से ज्यादा भारतीय कामगारों की आबादी का 1 प्रतिशत से भी कम है। यह तो जनसंचार माध्यमों पर सूचना तकनीकी वालों का दबदबा और मध्यम वर्ग के दिमागों पर उनके जादुई काढ़े का असर है कि वे हमें जितने हैं उससे कहीं ज्यादा बड़े दिखाई देते हैं।

भारत में व्यावसायिक समूह और शैक्षिक नामांकन

सभी बच्चों का स्कूल में नामांकन करवाने की कुछ बरसों की सरकारी कोशिशों के बाद इन दिनों स्कूलों की कक्षाओं में सभी सामाजिक वर्गों के बच्चे दिखलाई पड़ते हैं। हम सारणी दो की तुलना सारणी एक से करके देख सकते हैं कि कक्षाओं में सभी बच्चों की मौजूदगी का अनुपात, भारतीय आबादी में उनकी हिस्सेदारी के अनुपात के करीब है। उदाहरण के लिए, भूमिहीन खेतीहर कामगार, मछुआरे और जंगल में रहने वाले परिवार भारत के सबसे गरीब व्यक्तियों में से हैं। भारतीय घरों में से 1.6 प्रतिशत हिस्सा उनका है और प्राथमिक स्कूलों में नामांकित बच्चों में भी उनका हिस्सा 18.4 प्रतिशत है। लेकिन जैसे ही हम ऊंचे दर्जों पर निगाह दौड़ाना शुरू करते हैं, नामांकन पर सामाजिक वर्ग का जबरदस्त असर नजर आने लगता है। उच्च माध्यमिक स्कूलों में शिक्षित वर्गों के छात्रों का हिस्सा बढ़ने लगता है और अकुशल तथा खेतीहर कामगारों के परिवारों से आने वाले छात्रों की संख्या घटने लगती है। इसकी सबसे अंतिम छोर वाली तस्वीर देखनी हो तो इंजीनियरिंग कॉलेजों को लिया जा सकता है, जिसमें सभी छात्रों का 49.3 प्रतिशत पेशेवर तथा नौकरीपेशा परिवारों से आता है और 3 प्रतिशत से भी कम छात्र खेतीहर कामगार परिवारों से आते हैं। यह पूरी आबादी में उनकी हिस्सेदारी से काफी अलग है।

तालिका 2 : **भात में व्यावसायिक समूह और शैक्षिक नामांकन**

	प्राथमिक	उच्च प्राथमिक	माध्यमिक	उच्च माध्यमिक	कृषि स्नातक	इंजीनियरिंग /तकनीकी स्नातक	मेडिकल स्नातक	अन्य विषयों में स्नातक	अधि–स्नातक
मालिक, प्रबंधक, चुने हुए प्रतिनिधि, पेशेवर, प्रोफेसर	11.4	12.0	13.3	15.9	14.6	33.9	39.6	18.9	29.4
निम्न श्रेणी के शिक्षित कामगार, स्कूल अध्यापक, लिपिक, नर्स, तकनीकी सहायक, ज्योतिष	3.8	4.2	5.2	6.4	11.5	15.4	17.8	10.0	16.2
अकुशल कामगारः दुकान सहायक, होटल सहायक, रेस्टोरेन्ट कार्मिक, सुरक्षा सेवाएं, सडक विक्रेता, घरेलू कामगार, संदेशवाहक, दरबान	19.6	18.7	18.2	16.9	9.0	13.1	12.5	17.0	13.1
किसान < 2 हेक्टेयर	20.2	19.5	20.5	20.1	24.6	11.5	9.7	17.5	11.2
किसान 2-4 हेक्टेयर	4.2	4.4	4.8	6.1	7.9	3.8	0.4	5.7	4.6
किसान > 4 हेक्टेयर	2.2	1.9	2.4	2.5	3.2	1.9	6.1	3.6	3.0
पुश पालन और खेती	0.8	0.9	1.0	1.3	0.0	0.6	0.0	1.3	1.7
वन कामगार, मछुआरे, शिकार करने वाले, खेती कामगार	17.0	18.9	15.7	11.9	12.7	2.7	0.9	8.9	4.6
कुशल कामगार, शिल्पकार, मशीन संचालक, वाहन चालक	18.5	17.2	17.1	16.3	16.0	16.9	12.9	15.0	15.4
बेरोजगार, अज्ञात	2.4	2.2	1.9	2.6	0.6	0.1	0.0	2.0	0.8
कुल	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0	100.0

शहरी पेशेवर (डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, प्रबंधक, चार्टेड अकाउन्टेंट आदि) परिवारों के बच्चों में यह ठूंस-ठूंसकर भरा जाता है उनका भविष्य सिर्फ उनकी शिक्षा पर निर्भर करता है। उन्हें अपने परिवारों में यह जताया जाता है कि कड़ी मेहनत करो और ऊंची तनख्वाहों वाली नौकरियां हासिल करो। उनमें से कुछ यह सवाल जरूर उठाते हैं कि क्या ऊंची तनख्वाहों की नौकरी पाना ही शिक्षा का मकसद होता है। फिर भी, लिखित शब्द, किताबें और उनके चारों तरफ पाई जाने वाली शिक्षित दुनिया के तौर-तरीकों व विचारों की वजह से इस वर्ग के बच्चे, किशोर व युवा, इस या उस तरीके से उनके गहरे असर में आ जाते हैं। बहुत मुमकिन है कि खेतीहर कामगार परिवारों से आने वाले बच्चों के अभिभावकों के पास अपनी सारी जिंदगी में कभी किताबें खरीदने के लिए पैसे हुए हों। मालिकों की दबंगई तथा उनके द्वारा काम से निकाल दिए जाने पर काम मिलने की अनिश्चितता की वजह से, उनके लिए रोज जिंदा रहना भी कड़ा संघर्ष रहा है। ऐसा भी हो सकता है कि उन्होंने अपने परिवारों में किसी को भी अपनी शिक्षा पूरी करके, मिली हुई डिग्री के आधार पर नौकरी हासिल करते हुए नहीं देखा हो। वे सिर्फ उन्हीं स्कूलों के लिए भुगतान कर सकते हैं जो बेजान व उदास से हों और जहां पर बहुत कम ही सीखा जा सकता हो। इस बात की बहुत ज्यादा संभावना होती है कि इस वर्ग के बच्चे स्कूल छोड़कर अपने अभिभावकों के साथ आजीविका की तलाश में लग जाएं और करीब के ही किसी कस्बे में किसी छोटी-मोटी दुकान पर काम करना आरंभ कर दें। जहां पेशेवर परिवारों के ज्यादातर बच्चे कॉलेज की पढ़ाई पूरी करेंगे वहीं पर खेतीहर, भूमिहीन कामगारों के ज्यादातर बच्चे किसी कॉलेज को अंदर से नहीं देख पाएंगे।

भारत जैसे देशों की एक खास मुश्किल यह है कि अच्छी शिक्षा पा सकने वाली आबादी की परत हकीकत में बहुत ही पतली है। यहां आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जिसे या तो घटिया शिक्षा मिलती है या फिर शिक्षा बिल्कुल भी नहीं मिल पाती। बहुत सारे विकसित देशों में सरकारी स्कूल काफी बेहतर होते हैं और ज्यादातर आबादी अपने बच्चों को उन्हीं में पढ़ने के लिए भेजती है। अक्सर हमारे जैसे देशों में एक अच्छे स्कूल में भेजने के लिए आपके पास अच्छी-खासी आमदनी होना जरूरी है। इसका मतलब यह है कि जहां पर आमदनी और सामाजिक वर्गों के बीच गहरी असमानता होती है वहां पर इन दोनों मामलों में निचली पायदान पर रहने वालों को बहुत ही गैर-बराबरी वाला बरताव झेलना पड़ता है।

लोगों की आमदनी और उनके बच्चों की शिक्षा के साथ उसके संबंधों को दिखलाने वाले सर्वे भारत में गैर-बराबरी की एक दिल दहला देने वाली तस्वीर हमारे सामने पेश करते हैं। लोगों को अपनी असली आमदनी बतलाने के लिए राजी करना अक्सर अच्छा-खासा मुश्किल काम होता है, इसीलिए ऐसे सर्वे अक्सर इस बात की छानबीन करते हैं कि उनकी पिछले महीने या महीनों की उपभोग कितना रहा। लोगों से यह पूछना कि उन्होंने खाने, मनोरंजन और शिक्षा पर कितना खर्च किया, इस बात का एक ठीक-ठाक अंदाजा दे देता है कि वे कितने संपन्न हैं या नहीं। इससे हमें वह रकम मिल जाती है जिसे मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग खर्च (Monthly Per Capital Exenditure, एमपीसीई) कहा जाता है। जो हमें यह बताता है कि परिवार के हरेक सदस्य द्वारा उपभोग की जाने वाली चीजों पर औसतन एक महीने में कितनी रकम खर्च की जाती रही है। इसमें उन चीजों की कीमतें भी शामिल होती हैं जिन्हें बगैर किसी भुगतान के हासिल किया जाता है जैसे, परिवार द्वारा उगाई गई सब्जियां। हालांकि इसमें उनके द्वारा की गई बचतों और किराए के भुगतानों जैसी चीजों को छोड़ दिया जाता है।

भारत में उपभोग आधारित वर्ग

भारत में एमपीसीई के पैटर्न इस बात को लेकर किसी को भी चिंता में डाल सकते हैं कि किसको तो अच्छी शिक्षा मिल रही है और कौन इसे हासिल करने में नाकाम रह रहा है। 2011-12 में करीब 75 प्रतिशत आबादी का एमपीसीई 2000 रुपए से कम था। इसका मतलब यह है कि परिवार के हरेक सदस्य के खाने, दवाइयां, यात्रा और शिक्षा आदि पर किया जाने वाला खर्च प्रति माह 2000 रुपए से भी कम था। यानी करीब 67 रुपए प्रति दिन। करीब एक तिहाई (33.33 प्रतिशत) भारतीय आबादी हरेक व्यक्ति पर प्रति माह 1000 रुपए भी खर्च नहीं कर रही थी। यानी करीब 33 रुपए प्रति दिन। जरा इसकी तुलना इस बात से करिए कि भारत के किसी भी बड़े शहर में 10 किमी. की यात्रा

ऑटो से करने की लागत ही 100 रुपए से ज्यादा आती है। हमारे देश में इतने सारे लोग इतने कम पैसों के साथ जीते हैं, यह उन लोगों को बहुत विचलित करता है, जो इसके बारे में जानते हैं। दूसरी तरफ बहुत सारे मध्यम और उच्च वर्गीय लोग अपने खुशनुमा बाड़े की कैद में जीते रहते हैं, जहां वे कभी गरीबों से नहीं मिलते या वे कैसे जीते हैं, इसके बारे में सोचने पर मजबूर नहीं होते।

तालिका 3

भारत में उपभोग आधारित वर्ग

एमपीसीई	परिवारों का प्रतिशत
<1000	33.3
1000 < 2000	42.1
2000 < 3000	13.1
3000 < 4000	5.4
4000 < 5000	2.3
5000 < 6000	1.3
6000 < 7000	0.7
7000 < 8000	0.4
8000 < 9000	0.3
9000 < 10000	0.2
> 10000	0.7

हमारे देश में आमदनी और संपत्ति की गैर-बराबरी यहां पर शिक्षा के अर्थ के बारे कुछ गहरे सवाल खड़े करती है। एक तरफ तो इसका मतलब यह है कि अगर शिक्षा पैसा देकर खरीदी जा सकती है, तब बहुत की कम आबादी ऐसे स्कूलों को भुगतान कर सकती है जिनमें मध्यमवर्गीय अध्यापक हों। अगर कोई स्कूल अच्छी जगह से पढ़े हुए, विषय की अच्छी पकड़ वाले और शिक्षाशास्त्र में भी कुशल व समझदार अध्यापकों को रखना चाहता है तो उसे कम से कम 20,000 से 30,000 तक की तनख्वाह का भुगतान करना पड़ेगा। कुछ ऐसे जबरदस्त आदर्शवादी भी होंगे जो बहुत कम पैसों में काम करेंगे और छात्रों व सहकर्मियों की पीढ़ियों को प्रेरित करेंगे। लेकिन वे हमेशा ही संख्या में उंगलियों पर गिने जाने लायक ही रहेंगे। अगर स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता परिवार की आय पर निर्भर करती है तो करीब 75 प्रतिशत भारत को तो भूल ही जाना चाहिए। पिछले कुछ शतकों में पूरी दुनिया में एक दूसरे ही आदर्श ने रफ्तार पकड़ी है। वह यह कि लोगों को उनकी अमीरी या गरीबी की परवाह किए बगैर अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए। कई देशों ने इस आदर्श की तरफ जबरदस्त तरक्की की है। भारत इस मामले में चिंताजनक हालत में है।

एक दूसरा सवाल भारत के वर्गीय ढांचे का उठता है कि शिक्षा पर किसकी जरूरतों व संस्कृति का दबदबा कायम है। सफेद कॉलरों वाले कामगारों की आमदनी खेतीहर या यहां तक कि शहरी शारीरिक कामगारों की तुलना में भी बहुत ज्यादा है। तुलनात्मक रूप में संख्या में कम होने के बावजूद उनकी जरूरतें व प्राथमिकताएं भारतीय शिक्षा को बाकी सभी की जरूरतों व प्राथमिकताओं की तुलना में अपनी ओर ज्यादा ताकत से खींचती है। जैसा कि हम आगे चल कर अध्ययन करेंगे कि दूसरे वर्गों के बच्चे अक्सर स्कूलों में अपने-आपको बेगाना महसूस करते हैं। स्कूल का माहौल शैक्षिक कामगारों के बच्चों के माहौल के सबसे करीब होता है। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें और स्कूल में दिए जाने वाले उदाहरण भी अक्सर शहरी, नौकरीपेशा के बच्चों की जिंदगी के ज्यादा करीब होते हैं। ज्योतिबा फुले ने करीब सौ साल पहले गुलामगिरी (1871/1991) में इस बात का आरोप लगाया था कि धनी व समृद्ध परिवारों के बच्चों की शिक्षा को आर्थिक अनुदान देने के लिए गरीबों का शोषण किया जा रहा है। कुछ वर्गों के शोषण की बुनियाद पर कुछ दूसरे वर्गों का शिक्षा पर यह गैर-समानुपाती असर यहां तक कि आज भी चिंता का विषय बना हुआ है।

वर्गीय गैर-बराबरी क्यों मौजूद है?

वर्गीय गैर-बराबरी के कारण बहुत सारे हो सकते हैं और उन पर बहुत बहस भी होती रहती है। इसे समझने की शुरुआत करने के लिए एक बात यह कही जा सकती है कि देशों और क्षेत्रों में संपत्ति के वितरण में बहुत फर्क है। कुछ क्षेत्रों के पास उपजाऊ जमीन है तो कुछ के पास नहीं है। कुछ के पास खनिज संपदा है तो कुछ के पास उसकी कमी है। लेकिन प्राकृतिक संसाधन सबसे महत्त्वपूर्ण कारक नहीं हो सकते हैं। इसके बजाय राजनैतिक और सामाजिक कारक ज्यादा अहम् हो सकते हैं जिसमें तकनीकी विकास और इंसानी पूंजी भी शामिल होती है। मध्यकाल में ज्यादातर यूरोपीय देशों की तुलना में दक्षिण एशियाई देश समृद्ध थे, लेकिन जब ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन यहां आया तो हमारा आर्थिक विकास उनकी तुलना में बहुत पिछड़ गया। उपनिवेशवाद एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है जो पूरी दुनिया में संपत्ति की मौजूदा असमानताओं को समझने में मदद करता है। इसके तहत कुछ क्षेत्रों के शोषण की मदद से उनके

औपनिवेशिक शासक अमीर होते हैं। ब्रिटिश राज में भारतीय अर्थव्यवस्था कई बार लम्बे अर्से के लिए बढ़ने की जगह घटी थी। 1909-1947 की अवधि में वह बमुश्किल से शून्य से ऊपर रही थी। (सेन व ड्रेज : 2013, 22)

कुछ क्षेत्र क्यों अमीर हैं जबकि दूसरे क्षेत्र गरीब हैं, इस बात को समझाने के लिए आधुनिकीकरण का सिद्धांत एक दूसरा तरीका काम में लेता है। उसमें आधुनिकीकरण को कुंजी माना जाता है, जिसमें टैल्काट पार्सन जैसे समाजशास्त्री और वी. रास्तोव जैसे राजनीतिशास्त्री का मतलब विश्वविद्यालयों व स्कूलों के विकास केन्द्रीयकृत सरकारों और संवैधानिक लोकतंत्रों के गठन होने, एकल परिवारों तथा पूंजीवादी औद्योगीकरण के उद्‌भव से होता है। जिन क्षेत्रों में इनका विकास व्यवस्थित रूप से होता रहता है, वे अमीर होते जाते हैं और बाकी लगातार पिछड़ते जाते हैं।

इन दिनों नव-उपनिवेशवादी सिद्धांतकार यह मानने लगे हैं कि भारत का अमरीका, चीन और यूरोपीय देशों के पीछे रहने का कारण यह है कि विकसित देशों ने हमारे धन तथा खास तौर पर तकनीकी रूप से सक्षम शिक्षित लोगों को हड़प लिया। यह दलील भी दी जाती है कि ताकतवर देशों द्वारा संचालित नीतियां भारतीय उद्योगों और शिक्षा को कमजोर व अविकसित ही बनाए रखना चाहती है। दूसरी तरफ वैश्वीकरण के कुछ पैरोकार भी है जो यह मानते हैं कि चूंकि भारत अपने-आपको दूसरे देशों से मार्गदर्शन हासिल करने के लिए पूरी तरह से खोल नहीं रहा इसलिए हम अभी भी उनसे पीछे हैं।

किसी खास क्षेत्र में वर्गीय गैर-बराबरी, अंतर्क्षेत्रीय शोषण तथा नव-उदारवाद की वजह से भी हो सकती है लेकिन उसकी बहुत-सी जड़ें कहीं ओर भी पाई जाती हैं। भारत में मौजूद वर्गीय गैर-बराबरी के लिए सिर्फ औपनिवेशिक शासन को ही दोष देना मुश्किल है। वह ब्रिटिश राज के आने से पहले भी मौजूद था, उनके वक्त में भी जारी रहा और यहां तक कि उनके जाने के करीब 70 साल बाद भी जारी है, हालांकि इसके रूप जरूर बदल गए हैं। बहुत सारे समाजशास्त्रियों व राजनीतिशास्त्रियों द्वारा यह दलील दी जाती है कि भारत में गरीबी लगातार इसलिए मौजूद है क्योंकि ऊंची जाति वालों ने इसे जड़-मूल से उखाड़ने के लिए पर्याप्त कोशिश नहीं की। अमीर और मध्यम वर्ग की यह सदेच्छा हो सकती है कि गरीबी मिट जाए, लेकिन वे अपनी ही चिंताओं में इतने तल्लीन रहे कि भारतीय आबादी के बड़े हिस्से की समस्याओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाए। हालांकि आजादी के बाद आर्थिक विकास कुलांचे भर-भर कर आगे बढ़ा, लेकिन उसका पलड़ा भारतीय समाज के ज्यादा ताकतवर हिस्सों की तरफ झुका हुआ था। इससे उलट, दूसरे कई देशों जैसे, चीन, दक्षिण कोरिया, जापान, क्यूबा व कई दूसरे देशों ने अपनी संपत्ति का भी विस्तार किया और उसे गरीबों के साथ भी बांटा। शिक्षा ने इस विस्तार और बंटवारे में एक अहम् रोल अदा किया। इसने इस बात को मुमकिन किया कि ज्यादा से ज्यादा परिष्कृत चीजों व सेवाओं का उत्पादन किया जाए और जिनके पास बहुत कम पारिवारिक संपदा थी उन्हें भी इस काबिल बनाया कि वे इसके बावजूद नौकरियां हासिल कर सकें और कुल संपदा में भी अपना हिस्सा पा सकें। बेशक, इन देशों में भी समस्याएं हैं और उनकी शिक्षा बेहतरीन होने से अभी काफी दूर है। अब यह सवाल बचा ही रहता है कि क्यों भारत और दक्षिण एशियाई देश गरीबों को संसाधन व शिक्षा मुहैया करवाने के मामले में बेहतर काम नहीं कर पाए? इस शृंखला के अगले लेख में हम वर्गीय गैर-बराबरी के सिद्धांतों को देखेंगे और यह समझने की कोशिश करेंगे कि वर्गीय गैर-बराबरी का शिक्षा पर इतना गहरा असर क्यों पड़ता है? ◆

संदर्भ

Drèze, J., & Sen, A. (2013). An uncertain glory: India and its contradictions. London: Allen Lane.

लेखक परिचयः जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली से एमफिल एवं पीएचडी करने के बाद एकलव्य, हौशंगाबाद के साथ लगभग 3 वर्ष तक कार्य किया। इसके उपरान्त आईआईटी, कानपुर में समाजशास्त्र का अध्यापन किया। वर्तमान में अजीम प्रेमजी यूनीवर्सिटी, बैंगलोर में समाजशास्त्र के प्रोफेसर हैं।

भाषान्तर : रविकांत